एक दीया उसके नाम भी

एक दीया उसके नाम भी सुवर्णा ने ज़िद्द ठान दी थी “अब मैं इस ख़ैराती शिविर में नहीं रहूँगी। मुझे गाँव ले चलो।” मोहन उसे समझा-बुझाकर थक गया - “गाँव, गाँव हो तब तो! वह तो टाल (पानी से भरी जगह) बन गया है। न आदमी न जानवर! अधिकतर पेड़-पौधे भी सूख गए हैं। इसलिए चिड़ियां भी नहीं। किसके साथ रहोगी। इस राहत शिविर में हमारे गाँव के लोग ही हैं। सब जाएंगे तो हम भी जाएंगे।” मोहन को आष्चर्य हुआ था। शिविर में आकर सुवर्णा कोसी नदी को कोसती रही थी। उसकी धार सूख जाने का श्राप भी दिया था। स्वयं गाँव कभी न लौटने की कहती थी। पर अचानक उसे क्या हो गया!

मोहन के लाख समझाए सुवर्णा नहीं मानी। वह दूसरे लोगों से भी कहती-फिरती -“कब तक टांग पसारे बैठे ख़ैरात का खाते रहोगे। चलो, गाँव चलो। दशहरा बीत गया। दीवाली के बीस दिन ही बचे। दीया-बाती तो अपने घर में ही होगी न! कुल देवता और गाँव-जवार के देवी-देवता तो वहीं हैं न! कुंआ, तालाब और नदी भी। उन्हें दीया दिखाओगे कि नहीं। खेत जोतना-कोड़ना भी षुरू करना होगा। ये कबतक खिलाएंगे हमें।”

कई लोगों को सुवर्णा की बात उचित लगी। पर अधिकांशो ने उपहास ही उड़ाया। दिनभर ताष खेलते बैठे झुण्ड ने सुवर्णा की बात सुन, ताष की पत्तियों पर आँखें गड़ाए कहा -“जाओ। तुम गाँव चली जाओ। देवी-देवताओं के नाम पर दीया जला देना। वे गाँव पर खुश होंगे तो हमारा भी भला हो जाएगा।”

दूसरे ने कहा -“एक दीया कोसी मैया के घाट पर भी जला देना।”

सामूहिक हँसी के ठहाके थे। सुवर्णा अंतिम वाक्य नहीं सुन पाई। बाढ़ के जल में सबकुछ डूब जाने का दर्द कम हो गया था। राहत षिविर में बंटे बर्तन, कपड़े, कंबल, प्लास्टिक और भी सामानों का बंडल बांध-बांध ढ़ेर लगा लिए थे। षिविर में एक-एक परिवार को सोने की जगह आवंटित हुई थी। कुछ ने अधिक हथिया ली थी। वह भी उन सामानों से भर गई। अब तो वे सपरिवार राहत में मिले या लूट कर लाए सामानों के ढ़ेर पर ही बैठते-सोते थे। पिछले एक माह से हर दूसरे-तीसरे दिन कोई न कोई व्यक्ति गाँव जाता, लौटकर षिविर में सूचना देता -“अब जगदंबा स्थान (गाँव की सबसे ऊँची स्थान) से पानी उतर गया।”

“अब रामजी काका का बथान (ऊँचा स्थान) सूख गया।”

“आज़ गाँव की सड़क भी सूख गई।” सूचनाएं सुनकर धीरे-धीरे इक्का-दूक्का परिवार गाँव लौटने की सोचने लगा। पर उनका खाली शरीर तो था नहीं। खाली हाथ आए थे। सामानों का बोझ बढ़ गया था। लौटने के लिए कोई बड़ी सवारी चाहिए थी। शिविर में ठहरे लोगों का एक एसोसिएषन भी बन गया था। फिर दूसरा बना। तीसरा भी। दरअसल, बाढ़ के पानी में डूबते-उतराते एक दूसरे का हाथ थाम गाँव छोड़ते हुए बड़का टोला-छोटका टोलों की मनोमलिनता समाप्त हो गई थी। मानो बाढ़ के जल ने सबकुछ छीनकर इतना भर भला कार्य किया था। आपसी कटुता धो दी थी। बड़का-छोटका, सवर्ण-पिछड़े का भेद मिटा दिया था। डूबोने में भी कोई भेद-भाव नहीं किया था। आख़िर नदी है। माँ बराबर। पर जैसे-जैसे उधर गाँव से कोसी का जल घटता-सूखता गया, वैसे-वैसे शिविर में ही आपसी भेद पुनः अंकुरित होने लगा। राहत सामग्रियों के वितरण ने तो कई नेता उत्पन्न कर दिए।

उन एसोसिएशनों ने सामूहिक रूप से मांग की थी -“हमें गाँव लौटाने के लिए ट्रक-बस की व्यवस्था सरकार करवाए।”

उन्हें पानी से छान कर लाने में सरकार को कितनी मसक्क़त करनी पड़ी थी। बड़ा कठिन कार्य था। अब इन्हें वापस पहुंचाना भी कठिनत्तर ही होना था। सामानों के ढ़ेर जो थे। सरकार ने मांग मंजूर कर ली थी। पर सवारी की व्यवस्था इतनी आसान भी नहीं थी। प्रयास जारी था।

इधर सुवर्णा ने चार महिलाओं को अपने पक्ष में कर लिया। उनके बीच प्रस्ताव रखा -“देखो दीया-बाती के अब पाँच ही दिन बचे। ट्रक नहीं आया। आएगा भी तो बड़का लोग पहले झपट लेंगे। हम ऐसा करते हैं -थोड़ा बहुत खाने-पीने का सामान लेकर हम पाँचों बिना सामान के गाँव चलते हैं। साथ में खाने-पीने का पका सामान ले लेते हैं। चूल्हा सुखाने में भी समय लगेगा। जलावन भी तो बचा नहीं होगा। दीया ही तो जलाना है। सालभर का त्यौहार है। लक्ष्मी की पूजा। उसे कैसे छोड़ दें।”

शांति ने कहा -“ठीक कहती है दीदी। दीपावली में दीया नहीं जलाएंगे तो सारा साल अंधकार में बीतेगा।”

तीसरी की बुद्धि खुली -“ऐसा करते हैं। यहाँ सामान के साथ अपने मर्दों को छोड़ देते हैं। ट्रक आने पर वे सामान लेकर आएंगे। हम तबतक घर-आँगन की साफ-सफाई, लीप-पोत करेंगे। बाढ़ के पानी से बर्बाद हुए आँगन में घास-फूस उग आए होंगे। लक्ष्मी कैसे आएंगी ?”

सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित हुआ। उनलोगों ने अपने-अपने पति के कान में यह बात कही तो सब मिलकर बिफर पड़े -“पागल हो गई हो क्या ? अकेले वहाँ कैसे जाओगी। एक बात और है। दीवाली के समय यहाँ फिर बहुत सारे दानदाता आएंगे। ढेर सामान मिलेगा।”

“ठीक है। आप संभालिए सामान। मैं तो कल सुबह जाऊँगी गाँव। दो दिन रह गए दीवाली के। बाप-रे-बाप। दीया-बाती के दिन हमारे घर की लक्ष्मी उपास कैसे रहेंगी।”

“हूँह! लक्ष्मी है कहाँ ? टूटी-फूटी मडैया बस।” मोहन बुदबुदाया।

सुवर्णा ने हिसाब लगाकर ग्यारह दीए खरीद लिए। एक षीषी तेल। बैठी-बैठी क्या करती। बाती भी बांट ली। दियासलाई की ढेरों डिब्बियाँ मिली थी। एक थैले में सारा सामान और दूसरे में दो-तीन राहत में मिली नई साड़ियाँ रख लीं। पाँचों सुबह-सुबह तैयार हो गईं। उनके पुरुषो ने आपस में सलाह-मशविरा किया। मोहन ने कहा -“अब सोचने-विचारने का समय नहीं रहा। तिरिया हठ है। तिरिया हठ। सीता के हठ के आगे राम की नहीं चली तो हम किस खेत की मूली हैं। इन्हें जाने दो। श्यामु! तू इनके साथ जा। हमलोग तुम्हारे सामान की भी देखभाल करेंगे।”

पाँचों महिलाएं तेज़ कदमों से बस स्टैण्ड की ओर बढ़ीं। श्यामु भी पीछे हो लिया। पाँच घंटे की बस यात्रा दस घंटे में पूरी हुई। बस से उतर पगडंडी पर झटक कर चलने लगी सुवर्णा। धड़ाम! उसकी काया खेत में गिरी। चारो महिलाएं उठाने लगीं। श्यामु बोला -“अरे। राजधानी एक्सप्रेस गाड़ी की चाल भूल जाओ। पानी ढ़ेर दिन ठहरा रहा। कीचड़ है। काई जमी है। धीरे-धीरे चलो। पाँव दाब कर।”

वे एक-दूसरे को पीछे से पकड़े पाँव दाबे चल रही थीं। सांप, बिच्छू, जोंक, चाड़ा सब मिले। पानी में जन्मने वाले जीवों की भी कमी है क्या ? धरती तले रहने वाले जीव भी ऊपर आ गए थे। मानो संतुलन ही बिगड़ गया था। गाँव की सीमा प्रारंभ होते-होते दिन ढल गया। सूखी सड़क प्रारंभ हो गई। इनके पाँव में भी गति आ गई। पाँचों अपने-अपने आँगन में खड़ी हो गईं। चारों ओर गिरी पड़ी झोपड़ियाँ थीं। आँगन खाली था। धुप्प अंधेरा। अमावस्या आने में एक ही रात बीच में थी। सुवर्णा का मन किया पुक्का फाड़कर रोए। पर वहाँ उसका रूदन सुनने वाला भी कोई नहीं था। उसने रोक लिया मन को।

सबसे पहले चूल्हा टटोला। भीगा था। आग जल नहीं सकती थी। घर में दाल-चावल भी तो नहीं था। न जलावन। थैले से पूड़ी-सब्ज़ी निकाल कर खाई। पानी के लिए चापाकल का हैंडिल उठाया तो वह खट से नीचे बैठ गया। वह काली रात भी बीतनी थी, बीत गई। सुवर्णा ने न उसे धक्का दिया न बिलमाया।

सूरज के उगने के साथ एक आशा की किरण उसके आँगन में भी उतरी। वह बुदबुदाई -“सब ठीक हो जाएगा। उसकी सास के जमाने में भी ऐसी बाढ़ आई थी। सास ने बताया था कुछ बचा नहीं था। आख़िर फिर सब तो ठीक हो गया न। काया बचनी चाहिए। बच गई।”

शांति आ गई थी। बोली-"सुवर्णा दीदी। क्या मंतर पढ़ रही हो ?"

"लक्ष्मी को बुला रही हूँ। मंतर तो पढ़ना ही होगा। याद है न -दीवाली की रात अम्मा जी घर की परिक्रमा करती हुई कहती थीं -"लक्ष्मी जागे-दरिदर भागे।" इसीलिए तो आज़ यहाँ आ गई हूँ।"

"पर आज़ तो यमराज का दीया निकलेगा।"

"हाँ। आज़ तो छोटी दीवाली है। एक दीए में सात प्रकार का एक-एक अन्न रखकर बाती जलानी होगी। गोनौरा (घर के पिछवाड़े कूड़े का ढ़ेर) पर डालना होगा।"

और सायंकाल जब दीए में डालने के लिए सात अन्न के दाने ढूँढ़ने लगी तो एक भी दाना नहीं मिला। गिरी हुई छप्पर पर मक्की के सूखे बाल थे। उसने उसी में से दाने निकाल कर दीए में डालो। दीया जलाया। पिछवाड़े गई। पर वहाँ कूड़े का ढ़ेर नहीं था। कोसी के जल ने कूड़े को भी नहीं छोड़ा था। जगह तो बची थी। वहीं दिया डाल दी। यमराज को प्रणाम कर लिया।

दूसरी सुबह। दीपावली के दिन की षुरुआत। आँगन तो लीपना ही होगा। वह भी गोबर से। पर आसपास कोई जानवर नहीं। न गाय-न भैंस। आदमियों को बचा लिया। जानवर तो शायद ही बचें हों। मिट्टी से आँगन लीप लिए सुवर्णा ने। पाँचों मिलकर ब्रह्मस्थान और जगदम्बा स्थान भी लीप आईं। शाम ढ़लने का इंतज़ार था।

आँगन में बैठी सुवर्णा दीये का हिसाब करने लगी। दस ही बचे। दस ख़ास स्थानों पर ही जलाएगी। ब्रह्मस्थान, जगदम्बा स्थान, बैंगन-बाड़ी, आम के पेड़ के नीचे, तुलसी चौड़ा, आँगन, जाँता, हनुमान स्थान, तराजू और....और....। रुक गई सुवर्णा। बुदबुदाई -"एक दीया तो जलाषय के किनारे जलाकर जल में बहाना होगा। एक दीया कम पड़ जाएगा।"

जोड़-घटाव करती सुवर्णा चिंतित थी। शांति आ गई थी। उसे देख बोली -"अब क्या हुआ ? अब शाम को दीया जला लो। और सुबह शिविर लौट चलो। यहाँ नहीं रहा जा सकता।"

"अब मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। सामान लेकर वे चले आएंगे। आगे सोचेंगे। अभी एक दीया कम पड़ रहा है। उसकी चिंता है।"

"किसके हिस्से का ?"

"छोड़ो भी। नाम जानकर क्या करोगी! पर उसके नाम का दीया जलाना आवष्यक है।"

शाम घिर आई। पाँचों मिलकर ब्रह्मस्थान, जगदम्बा स्थान पर दीए जला आईं। तुलसी और आम के पेड़ सूख गए थे। फिर भी उन स्थानों पर दीया जला दिए। बैंगन-बाड़ी में बैंगन के सूखे पौधे थे। अचानक सुवर्णा कहीं अंधेरे में गुम हो गई। धुप्प अंधेरा था। हाथ को हाथ न सूझे। चारांे घबरा गईं। कहाँ गई होगी ? खोजते-ढूँढ़ते चारांे कोसी के किनारे पहुँची। धार में एक दीया जल रहा था। वे नीचे उतर कर गईं। वहाँ सिर नवाए सुवर्णा बुदबुदा रही थी -"हे कोसी मैया। मुझे माफ़ कर देना! मैंने आपको बहुत भला-बुरा कहा। पर तुम तो माँ हो। सब बच्चों को माफ़ करना। गाँव का भला करना।"

शांति ने उसे उठाया -"क्या कर रही हो यहाँ ? कहीं मेरी गाय की तरह तुम्हें भी.....।

"डरो मत! दो पल बैठो यहाँ। तुलसी, आम, बैंगन सब सूख गए। कोसी की धार जीवित है। यह तो माँ है। पचास वर्श पूर्व गाँव में आग लगने का किस्सा मेरी सास सुनाया करती थीं। उन्होंने कहा -दो दिनों तक आग नहीं बूझी। पर चूल्हा जलाने के लिए न आग न चावल-दाल बची थी। चार दिनों बाद चूल्हा जला। मेरी सास ने आग सुलगाकर उसे प्रणाम किया। फिर जले हुए चावल-दाल में से बिनकर खिचड़ी बनाई। वह घर को जलाने वाली आग नहीं थी। खिचड़ी पकाने वाली आग को प्रणाम किया था। मैंने भी जीवन देने वाले जल को प्रणाम किया है।

"हूँह! पागल हो गई हो क्या ? कोसी में दीया जलाने आ गई। हमारे सारे दुःख की जड़ यही है। इसका नाम भी मत लो। लक्ष्मी का दिन है। यह तो राक्षसी है।"

सुवर्णा गंभीर हो गई। बोली -"शांति! कोसी तो माँ है। फिर देगी। धन-धान्य से गाँव भर देगी। देखना! इस साल अच्छी फसल होगी। धरती के अंदर कोषी का आँचल फैल गया है। मेरी सास कहती थीं -दीवाली के दिन नदी में दीया जलाना जरूरी है।"

"चलो! तुमलोग भी प्रणाम करके आशिष ले लो कोसी मैय्या से। हम सबने इन्हें बहुत कोसा है। पर ये माफ़ कर देंगी। माँ है न! गाँव को डुबोने वाला जल दूसरा था। उसे कोसते रहे हम। यह जल दूसरा है। जीवन है। इसे प्रणाम करो।"

पद्मश्री स्व. मृदुला सिन्हा

(पूर्व राज्यपाल, गोवा)